पूज्य ललचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन नंबर: LA ३४१
स्मयसार गाथा -३७३-३८२
पर्युषण पर्वा-उत्तम क्षमा धर्म

Version 1

आज से दस दिन तक पर्युषण पर्वाधिराज के मांगलिक दिन शुरू होते हैं। गुरुदेव ने तो पर्युषण पर्वों अर्थात, शुद्धात्मा की आराधना करना, उसकी सेवा करना, उसके अंतर-सन्मुख होकर अनुभव करना आत्मा का, उसका नाम पर्युषण पर्व कहने में आता है। द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, और भाव से, चारों तरफ से अंतर्मुख होकर, और उसके भेदों को भी लक्ष में से छोड़कर, अभेद आत्मा का अनुभव करना, आराधना करनी, इसका नाम पर्युषण पर्व कहने में आता है।

अनंत-अनंत काल से आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर विराधना कर रहा है। और विराधना करके वह यहाँ जन्मा है। सम्यग्दृष्टि का जन्म यहाँ पर नहीं होता है। यहाँ पर जन्म लेने के बाद सम्यग्दृष्टि हो सकता है लेकिन वह आता है, तो मिथ्यात्व लेकर ही यहाँ आता है। पूर्व भव में सम्यग्दर्शन हो और उसका आयुष्य पूरा हो जाये अ तो वह स्वर्ग में जाता है लेकिन यहाँ नहीं आता, मनुष्य होकर, ऐसा नियम है। तो अनंत-अनंत काल से जो आत्मा को भूलकर पर को अपना मानना, उसका नाम विराधना है। उसका नाम अपराध है।

और पुण्य-पाप के परिणाम से और इन्द्रियज्ञान से भिन्न, अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा का अनुभव करना, उसका नाम आराधना है। ये आराधना के दिवस हैं। उसमें आज प्रथम उत्तम क्षमा का दिन है। इसके ऊपर पूज्य गुरुदेव के व्याख्यान तो हो चुके हैं। पहले थोड़ा उसमें से लेने में आता है। **उत्तम क्षमा धर्म-दस लक्षण पर्व।उत्तम क्षमा धर्म-दस लक्षण पर्व।**

आज से दसलक्षण पर्व प्रारम्भ होता है। सबसे पहला दिन उत्तम क्षमा का है। चारित्र दशा में प्रवर्तमान मुनियों के उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्म होते हैं। इन उत्तम क्षमादि धर्मों से ही चारित्र दशा होती है, वह चारित्र मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वे चारित्र के कारण हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को मोक्षमार्ग कहना सो उपचार है, क्योंकि जिनके सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए हों उनके अवश्य ही अल्पकाल में सम्यक्चारित्र प्रगट होता है, इससे सम्यग्दर्शन होते ही मोक्षमार्ग कह दिया है; किन्तु मोक्ष के लिए साक्षात् कारण तो वीतरागी चारित्रदशा, अर्थात् शुद्धोपयोग की दशा। शुद्ध परिणति भी परंपरा से कारण है।

छठ्वें (गुणस्थान) की परिणति जो शुद्ध है तीन कषाय के अभावपूर्वक मुनिराज की, अंदर में भावलिंग प्रगट हो गया है और बाहर में द्रव्यलिंग होता है। उनके वस्त्र का तानाबाना नहीं होता। उनके मोर-पीछी और कमंडल उपकरण सहित के बाहर के साधन होते हैं। ऐसी कोई शुद्धोपयोग की दशा सातवें, आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें, उसे वास्तव में साक्षात् मोक्ष का कारण कहने में आता है। चौथे गुणस्थान की शुद्धपरिणति भी परंपरा मोक्ष का कारण है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान भी चौथे-पाँचवेवाले को

भी परंपरा मोक्ष का कारण है। राग तो परंपरा से भी मोक्ष का कारण नहीं है। वह तो वर्तमान में भी बंध का कारण और परंपरा से लंबा करे राग, तो भी वह बंध के कारणरूप रहा है।

उस चारित्र दशा के उत्तमक्षमादि दस प्रकार हैं। इन उत्तम क्षमादि दस धर्मों की आराधना का पर्व आज से प्रारम्भ होता है। आहाहा! अर्थात् ये दस प्रकार के, १० दिन ही हैं इतनी ही आराधना करनी और बाकी के दिनों में विराधना करनी, ऐसा नहीं है। लेकिन उन बारह महीनों में उसे थोड़ा टाइम मिला हो तो इन दस दिन में पूरा टाइम निकालकर उसकी आराधना करने का टाइम निकालना चाहिये। दस दिन तो वास्तव में व्यापार से भी निवृत्ति लेनी चाहिये, आहाहा! और एकमात्र आराधना स्वरूप में, स्वरूप का विचार और स्वरूप का अनुभव करने का प्रयत्न और अनुभव हो तो विशेष ठहरने का प्रयत्न, इस प्रकार की आराधना के दिवस हैं।

दसलक्षणपर्व' का अर्थ है 'मोक्ष की आराधना का महोत्सव। आज से यह महोत्सव प्रारम्भ हुआ है। उत्तम क्षमा की व्याख्या, गुरुदेव के श्रीमुख से हुई व्याख्या है, आहाहा! पंचमकाल में ये पुरुष पके हैं। जैसे हमारे लिये ही उन्होंने यहाँ जन्म लिया हो, ऐसा बनाव बन गया। बिल्कुल अंधेरा था, आहाहा! **आज का दिन उत्तम क्षमा का माना जाता है। सम्यग्दर्शन के बिना उत्तम क्षमा होती ही नहीं। लोकरीति में शुभभाव को क्षमा कहते है।** परस्पर बैरभाव हुआ हो तो परस्पर क्षमा प्रदान करने से उनका मन हल्का हो जाता है कषाय से, इसप्रकार के भाव शुभभाव होते हैं। **शुभभाव को क्षमा कहते हैं, उसका निषेध करने के लिए यहाँ उत्तमक्षमा-- ऐसा कहा है।**

आहाहा! क्षमा के आगे जो "उत्तम" शब्द प्रयोग करने में आया है, लिखने में आया है, वह वीतरागी क्षमा है। शुभभाव की क्षमा तो बंध का कारण है और चारित्रवंत धर्मात्माओं को वीतरागी क्षमा होती है। वह क्षमा, वह चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। बाद में कहेंगे चौथे, पांचवें में भी जघन्य ऐसी उत्तम क्षमा होती है। निश्चय से अपना आत्मस्वभाव त्रिकाल ज्ञायक मूर्ति है। जाननेवाला-जाननेवाला-जाननेवाला है। उसकी पहचान और बहुमान करना, आत्मा का तथा राग-द्वेष क्रोधादि की रुचि छोड़ना।

राग-द्वेष को छोड़ना- ऐसे नहीं कहते हैं लेकिन राग की रुचि छोड़नी। इंद्रियज्ञान छोड़ना- ऐसा नहीं, लेकिन इन्द्रियज्ञान की रुचि छोड़नी, आहाहा! कि इन्द्रियज्ञान वह ज्ञान नहीं है ऐसा जानना। और राग वह एकमात्र बंध का कारण है लेकिन मोक्ष का कारण नहीं है ऐसा जानना। **वह उत्तम क्षमा की आराधना है। आत्मस्वभाव का अनादर करके पुण्य-पाप की रुचि करना सो क्रोध है।** स्वभाव को छोड़कर पुण्य की रुचि करना, शुभभाव मीठा लगे, वह हित का कारण लगे, तो कहते हैं कि वह क्रोध है। आत्मा की अरुचि का नाम क्रोध है। **और आत्मस्वभाव के आदर द्वारा पुण्य-पाप की रुचि को छोड़ देना ही उत्तम क्षमा है।**

दस दिनों को पर्व कहना तो उपचार है, आत्मा के स्वभाव की पहचान पूर्वक, चारित्र धर्म की दस प्रकार से आराधना करना, वह साधक जीव का सच्चा पर्व है। पर्व अर्थात् आराधना। उस आराधना का आरोप करके अमुक दिन को 'पर्व' कहना सो व्यवहार है। किन्तु जो आत्मा अपने में आराधकभाव प्रगट करे निश्चय मोक्षमार्ग, **उसके लिये व्यवहार से दिन को**

पर्व कहा जाता है। किन्तु जिसे आत्मा का भान नहीं है, ज्ञान नहीं है , जिसे **अपने में ही पर्व नहीं है, तब फिर दिन में भी उपचार किसका करना?** अर्थात आज उत्तम क्षमा का प्रथम दिवस है। वीतरागी क्षमा।

अब, उस चारित्र के जो दस धर्म कहे हैं, उस वीतरागी चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान कैसे प्रगट हो प्रथम, उसके लिये समयसार की रचना हो गई है। अनादि अप्रतिबुद्ध जीव के (लिये है), मुनिराज के लिये नहीं है यह समयसार, अपितु अनादि से अज्ञानी जो अपने शुद्धात्मा से अनजान है, मिथ्यादृष्टि, विपरीत दृष्टि है, ऐसे जीवों को प्रथम भेदज्ञान करके, अभेद का अनुभव करके और सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे प्रगट हो उसके लिये इस शास्त्र की रचना करने में आयी है। आचार्य भगवान स्वयं ही कहते हैं, कि मैं एकत्व-विभक्त आत्मा की बात कहूँगा।

अभी हमने टेप में भी सुना। कि रागादि से भिन्न ज्ञायक का लक्ष करना और राग आदि परभाव का लक्ष छोड़ना, उसका नाम एकत्व-विभक्त कहने में आता है। अनंतगुणों से आत्मा एकरूप है और सर्व प्रकार के विभावभावों से विभक्त अर्थात् भिन्न है। उन विभावों के दो प्रकार हैं। एक राग को भी विभाव कहा जाता है और एक राग को जाननेवाला जो इन्द्रियज्ञान, वह भी विभावभाव है। वह स्वभावभाव नहीं है क्योंकि इन्द्रियज्ञान का तो अभाव हो जाता है केवलज्ञान होता है जब। यदि इन्द्रियज्ञान स्वभाव हो और राग स्वभाव हो तो राग और इन्द्रियज्ञान दोनों रहने चाहिये, लेकिन रहते नहीं हैं इसलिए वे विभाव हैं, निकल जाते हैं। द्रव्य में तो वे नहीं हैं, लेकिन बहुत गहराई से लंबा विचार करने में आये तो वो पर्याय का भी स्वभाव नहीं है क्योंकि निकल जाते हैं।

द्रव्य स्वभाव में, अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा में, इन्द्रियज्ञान का तो अभाव है, सर्वथा अभाव है, सर्वथा भिन्न है। कथंचित् भिन्न-अभिन्न नहीं है। इसप्रकार रागादि सर्वथा भिन्न हैं आत्मा में। आत्मा में तो सर्वथा भिन्न हैं, लेकिन एक समय की पर्याय में जब तक होते हैं, तब तक उसमें उनका सद्भाव होता है। क्या कहा? अजमेराभाई! भगवान आत्मा में तो इन्द्रियज्ञान और राग, उनका तो तीनों काल अभाव है। जब सद्भाव पर्याय में है, परलक्षी उघाड़ इन्द्रियज्ञान का और परलक्षी राग, उसका पर्याय में जब तक सद्भाव है, अज्ञानी को भी, तब तक भी उस पर्याय में वे भाव समय मात्र हैं, लेकिन आत्मा में उनका सर्वथा अभाव है। वे द्रव्य में तो नहीं हैं और पर्याय में भी समयवर्ती हैं, त्रिकालवर्ती नहीं हैं।

क्या कहा? यह मिथ्यात्व है न? यह पर्याय में भी त्रिकालवर्ती नहीं है, समयवर्ती है। मनुभाई! यह समझने जैसा है। मिथ्यात्व का राग, भगवान ज्ञायक परमात्मा में तो उसका अभाव है, आहाहा! और पर्याय में सद्भाव है लेकिन पर्याय में भी समयवर्ती सद्भाव है। त्रिकालवर्ती मिथ्यात्व रहता नहीं है। और इन्द्रियज्ञान का भी, है तब तक पर्याय में सद्भाव है। जरा पर्याय धर्म को देख लंबा करके, द्रव्य पर दृष्टि रखकर, यह शर्त है। द्रव्य पर दृष्टि रखकर, द्रव्य को देखते-देखते यदि पर्याय को देखेगा न, द्रव्य को देखते-देखते यदि पर्याय को देखेगा न, तो तुझे पर्याय में भी इन्द्रियज्ञान और राग लंबे काल तक रहेगा, ऐसा दिखता नहीं है। उसका अभाव हो जायेगा ऐसा दिखता है। ऐसी पर्याय के दर्शन हो जाते हैं।

भगवान आत्मा में तो इन्द्रियज्ञान.., अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा है उसमें परलक्षी इन्द्रियज्ञान कहाँ है? वह तो विभाव है, उसका तो स्वभाव में त्रिकाल अभाव है। लेकिन एक समय की परलक्षवाली,

शास्त्र के लक्षवाला जो ज्ञान, उस शास्त्र के संबंधवाला जो ज्ञान, इन्द्रियज्ञान, मानसिक ज्ञान, उस इन्द्रियज्ञान को भी एक पर्याय में भी, आहाहा! क्षणिक तादात्म्य है। क्या कहा? इंद्रियज्ञान भी, अतीन्द्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा में तो वह नहीं है लेकिन, पर्याय में है तब तक है। और पर्याय में राग है तब तक है। लेकिन पर्याय में भी त्रिकाल रहे राग, अज्ञानी की पर्याय में भी त्रिकाल, अनादि अनंत राग रहे पर्याय में या पर्याय में इन्द्रियज्ञान रहे, ऐसा पर्याय का स्वभाव नहीं है।

एकमात्र स्वभाव का लक्ष करके, अरे! अनुभव से पहले स्वभाव की अधिकता करके, स्वभाव के ऊपर, आहाहा! स्वभाव को देखते-देखते पर्याय को देखेगा न तो पर्याय में राग लंबा होता हुआ नहीं दिखेगा, इन्द्रियज्ञान लंबा होते हुए नहीं दिखेगा। केवलज्ञान दिखेगा तुझे, यथाख्यातचारित्र दिखेगा। पर्याय में अभी, हों! आहाहा! ऐसा पर्याय का स्वभाव है। पर्याय में मिथ्यात्व रहे? आहाहा! भले एक समय के लिए हो लेकिन त्रिकालवर्ती नहीं है।

पानी गरम होता है, कितने समय रहता है? थोड़े समय। शरीर में बुखार आता है, तो कितने समय? थोड़े समय। बाद में नॉर्मल हो जाता है या नहीं? उस पर्याय में उष्णता आयी न ? वह उष्णता लंबे समय तक नहीं रहती। वह डॉक्टर का कहना मानता है कि तीन दिन में बुखार उतर जायेगा। ज्ञानी कहते हैं कि पर्याय में मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है, समयवर्ती है, त्रिकालवर्ती नहीं है, इसलिए निकल जायेगा। स्वभाव का अवलंबन लेने पर उसका अभाव चुटकी मात्र में हो जायेगा। क्षण मात्र में। आहाहा!

उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार!
अंतर्मुख अवलोकते, नहीं विलय में देर।

आहाहा!

अनादि का मिथ्यात्व था। गणेशभाई! उस पर्याय में से मिथ्यात्व जाने में कितने दिन लगते होंगे, रमेश?

मुमुक्षुः- एक क्षण।

उत्तरः- एक क्षण, समय मात्र। आहाहा! मिथ्यात्व की चिंता छोड़ दे। आत्मा का स्वभाव जैसा है वैसा रटन कर, अपनेआप मिथ्यात्व का अभाव हो जायेगा। जो स्वभाव को भूलता है उसकी पर्याय में राग होता है। राग की रूचि करता है तब तक राग होता है। लेकिन राग की रूचि छोड़कर स्वभाव का लक्ष करे तब पर्याय में भी विभावभाव का अभाव होकर **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग**प्रगट होता है। ऐसा पर्याय का स्वभाव है। (वह राग) पर्याय में लंबे टाइम तक नहीं रहेगा।

ऐसे गुरू मिले, ऐसी जिनवाणी तुझे मिली, आहाहा! ऐसे समयसार आदि शास्त्र मिले, कुंदकुंदाचार्य और अमृतचंद्राचार्य जैसे संत मिले और उनको समझाने वाले उपकारी गुरु मिले और उसको संसार रहे, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! गुरु की पहचान हो जाये और गुरु (जैसा) कहते हैं ऐसा करे और संसार रह जाये, ऐसा बननेवाला नहीं है। आहाहा! आराधना के दिवस हैं न ये तो? हाय! हाय! हम मिथ्यादृष्टि! अरे! हम भगवान हैं ऐसा लो न? मिथ्यादृष्टि को किसलिये याद करते हो? तुम मिथ्यादृष्टि तो हो नहीं। तुम तो भगवान आत्मा हो।

गुरुदेव ने क्या कहा? भगवान आत्मा हैं सभी। आहाहा! ये विभाव को याद करते हैं बोलो, आहाहा! कोई निर्धन हो, तो निर्धन दशा कायम रहे ऐसा है? आहाहा! थोड़े समय में अच्छा हो जायेगा। ब्राह्मण-ज्योतिषी, आकर कहे कि छह महीने में तेरे पुण्य का उदय होगा। तो उसकी माने और संत कहते हैं, ज्यादा से ज्यादा छह महीने अभ्यास कर तो सम्यग्दर्शन हो जायेगा। ऐसे बड़े ज्योतिषी की तू मानता नहीं है, आहाहा! त्रिकालवर्ती सर्वज्ञ भगवान और उनके संत बड़े ज्योतिषी हैं, हों वे! और वह ज्योतिष पलटता नहीं हैं, आहाहा!

ऐसे चारित्र के दिवस हैं ये। मुनिराज को उत्तम क्षमा होती है। यहाँ अब सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? उसके लिये सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार समयसार का है। और उसकी गाथा ३७३ से ३८२, ऐसी दस गाथा लेने का भाव है, स्वधायाय करने का भाव आया है। उसके ऊपर का शीर्षक है। गाथा जो है न? हरिगीत, उसके ऊपर उसका शीर्षक। शीर्षक। क्या उसमें आनेवाला है? वह पंडितजी स्वयं लिखते हैं। जयचंदपंडित हो गये, जयपुर में। पौने दो सौ-दो सौ वर्ष पहले। उन्होंने यह अनुवाद किया है। उनका यह लिखा हुआ है।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, रमेश मिला? **स्पर्श रस, गंध, वर्ण और शब्दादिरूप परिणमते पुद्गल**, इन शब्दरूप कौन परिणमता होगा? आत्मा या पुद्गल? आहाहा! गुरुदेव कहते हैं बनिया को विचार करने का समय नहीं मिलता। शब्दरूप पुद्गल परिणमता है। किशोरभाई! आत्मा शब्दरूप परिणमता नहीं है, इसलिए शब्द की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! पुद्गल परिणमता है ऐसा लिखा है इसमें। **परिणमते पुद्गल आत्मा से कहीं यह नहीं कहते हैं कि 'तू हमें जान',** एकदम ऊँचे प्रकार की गाथा है। अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा और इन्द्रियज्ञान, दो के बीच के भेदज्ञान का फैसला है।

आत्मा और राग के बीच का फैसला तो पूरे समयसार में, आत्मा और आस्रव भिन्न हैं, ये बात तो स्थान-स्थान पर आती है। लेकिन इंद्रियज्ञान से अतीन्द्रिय ज्ञानमय ज्ञायक आत्मा भिन्न-भिन्न हैं ये दो तत्व, ये बात बहुत कम आती है शास्त्रों में। लेकिन आयी तो है। आयी तो है। समयसार में भी बहुत जगह पर है, इस एक जगह पर नहीं है, आहाहा! बहुत जगह पर है, बिखरी हुई।

वह बात कहते हैं कि स्पर्शादि पदार्थ, शब्दादि पदार्थ **आत्मा से कहीं यह नहीं कहते हैं कि 'तू हमें जान',**। शब्द ऐसा नहीं कहते कि तू हमें जान। धीरज, क्या कहा? शब्द ऐसा नहीं कहते कि तू हमें जान। यह जो शब्द निकला न, तुम्हारे कान पर आया न, कान तक आता है वह। इससे आगे जाता नहीं है। कर्णेन्द्रिय का विषय है वो। ज्ञान का विषय नहीं है। समझ में आयेगा हों धीरे-धीरे। दस दिन अपने हाथ में हैं। एक दिन हो तो जरा कठिन पड़े। दस दिन हैं न इसलिए समझ में आयेगा। नहीं समझ में आयेगा ये तो निकाल ही देना। ऐसे (ना ना) तो करना ही नहीं। और समझे बिना ऐसे (हाँ) नहीं करना। ऐसे करना। एकदम सही समझ में आये तब ऐसे (हाँ) करना। ऐसे (ना) तो करना ही नहीं।

यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी, तीन लोक के नाथ की वाणी, कुंदकुंदाचार्य भगवान की वाणी आयी है। आहाहा! कि ऐसा **नहीं कहते हैं कि 'तू हमें जान', और आत्मा भी**, उस (पुद्गल के) पक्ष से कहा। अब इस (जीव के) पक्ष से बात करते हैं। शब्द निकलते हैं, वे ऐसा नहीं कहते शब्द-जड़, आत्मा को ऐसा नहीं कहते कि तू मुझे सुन। तू मुझे जान। इस तरह शब्द जड़ हैं। वे कोई कहेंगे आत्मा को

कि तू मुझे जान? ऐसा कहते नहीं हैं। और यहाँ (जीव के) पक्ष से बात करते हैं।

और आत्मा भी अपने स्थान से छूटकर, स्वयं को जानना छोड़कर, आहाहा! अमृत जैसी गाथा है। आत्मा ज्ञानानंद परमात्मा, उसका लक्षण उपयोग है और उपयोग में निरंतर बाल-गोपाल (सभी को) भगवान आत्मा इस में जानने में आ रहा है। वह अपने को जानना छोड़कर शब्द को जानने नहीं जाता। तब कौन उन्हें जानता है? ऐसे प्रश्न बहुत आयेंगे। इन प्रश्नों के उत्तर भी इसमें आयेंगे सब धीरे-धीरे-धीरे। धीरे-धीरे आवें न? एक साथ सभी बात नहीं होती। दो बात की। शब्द ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान। और यह आत्मा है.., सभी के आत्मा की बात है हों! इस आत्मा का स्वभाव आत्मा को जानने का है। शब्द को जानने का नहीं है। शब्द को जानने का हो तो तो शब्द को जाने। लेकिन आचार्य भगवान कहते हैं कि शब्द को जाननेवाला ज्ञान अलग और आत्मा को जाननेवाला ज्ञान अलग। अंदर दो भाग पड़े हुए हैं। सुन तू! आहाहा! एकत्व-विभक्त आत्मा की बात मैं कहूँगा। शब्द ऐसा नहीं कहते हैं कि तू मुझे सुन और आत्मा भी अपने स्थान से अर्थात् अपने को जानना छोड़कर, आहाहा! उन्हें जानने नहीं जाता। अर्थात् उनका लक्ष करके जाने ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! आत्मा को जानना छोड़ता नहीं और शब्द को जानने जाता नहीं और शब्द कहते नहीं हैं कि 'तू मुझे जान'। आहाहा! अंदर में से हाँ आ जायेगी ऐसी बात है यह। कुंदकुंद की वाणी है। **उन्हें जानने को नहीं जाता**, आहाहा!

दोनों सर्वथा स्वतंत्रतया अपने अपने स्वभाव से ही परिणमित होते हैं। पुद्गल शब्दरूप परिणमते हैं और आत्मा स्वयं को जाननेरूप परिणमता है। अपने को भी जाने और शब्द को भी जाने, ऐसा स्वरूप नहीं है। हमें सब पता है, आयेगा स्वपरप्रकाशक का, खुलासा तो आयेगा। आये तो सही न, भाई! स्व को जाने और शब्द को भी जाने। व्यवहार से वह सब आता है शास्त्र में, तो उसका क्या? उसका तो स्पष्टीकरण आहिस्ता-आहिस्ता,धीरे-धीरे, आहाहा! खुलासे तो सब आएंगे। परमार्थ की बात उसने सुनी ही नहीं है। व्यवहार की बात उसने सभी सुनी हैं। व्यवहार सच्चा लगा है। ये व्यवहार सच्चा लगा, उसका (फल) संसार- चार गति का दुःख है। जब व्यवहार झूठा लगेगा और निश्चय सच्चा लगेगा तब उसे अनुभव हो जायेगा। आहाहा! इस काल में अनुभव हो सकता है। चारित्रदशा भी पंचमकाल में आ सकती है। छठवें-सातवें गुणस्थान तक आ सकता है। श्रेणी नहीं है वर्तमान में, अतः अरिहंत दशा वर्तमान में होती नहीं है। तो छठ्ठा- सातवाँ यदि आ सकता है इस पंचमकाल के अंत तक, तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो साधारण है, गृहस्थ को हो सकता है। व्यापार करते हुए भी हेय-अहेय का, घर काम करते हुए भी हेय-अहेय का ज्ञान.., योगसार में लिया है। आहाहा! सम्यग्दर्शन के लिये नग्न होने की जरूरत नहीं है। आहाहा! चारित्र दशा के लिये नग्न दशा होती है। वे (मुनि) कपड़ेवाले नहीं होते। लेकिन यहाँ तो कहते हैं, कपड़े मेरे नहीं हैं और कपड़ों को मैं जानता नहीं हूँ। मैं तो जाननहार को जानता हूँ। कपड़ा-कपड़े में रह जाता है, देह-देह में रह जाती है, परावलंबी ज्ञान पर में रह जाता है और अनुभूति हो जाती है। आहाहा! गृहस्थी को अनुभव होता है। **दोनों सर्वथा स्वतंत्रतया अपने अपने स्वभाव से ही परिणमित होते हैं।** जड़-पुद्गल शब्दरूप परिणमते हैं और आत्मा स्वयं को जाननेरूप परिणमता है। ऐसी (वस्तु की) स्थिति है। यह स्थिति का वर्णन है। **इसप्रकार आत्मा पर के**

प्रति उदासीन (- सम्बन्ध रहित, तटस्थ) है, आहाहा! आत्मा को शब्द के साथ ज्ञाता-ज्ञेय के संबंध का अभाव है। उसके साथ ज्ञाता-ज्ञेय संबंध कब हो? कि यहाँ से ज्ञाता-ज्ञेय संबंध छूटे तो उसके साथ ज्ञाता-ज्ञेय संबंध हो। आत्मा ज्ञाता और शब्द की पर्याय मेरा ज्ञेय, ऐसा है नहीं। शब्द की पर्याय को यदि ज्ञेय बनायेगा तो शब्द की पर्याय तेरा कर्म हो जायेगा। जो ज्ञेय होता है वह कर्म होता है। इसलिए मेरे ज्ञान का ज्ञेय तो मेरा भगवान आत्मा है। मेरे ज्ञान का ज्ञेय शब्द नहीं है। आहाहा! आराधना के ऊंचे दिनों में सारा ऊंचा ही माल होता है। रोटी तो रोज मिलती है, समझ गये? लेकिन मिष्टान्न तो? शुभ दिन पर ही मिष्टान्न मिलते हैं। ये मिष्टान्न है। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा पर के प्रति उदास है, ऐसा उसका स्वभाव है। पर को लक्ष करके जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। परपदार्थ, लोकालोक भले ही जानने में आयें, लेकिन उन्हें जानता नहीं है। शब्द जानने में आये भले लेकिन शब्द को जानता नहीं है। स्वपर प्रकाशक है न? दोनों का प्रतिभास होता है। ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक का प्रतिभास है और शब्दों का प्रतिभास तो होता है। लेकिन 'मैं शब्द को जानता हूँ' वह अज्ञानी हो जाता है। और 'जाननहार जानने में आता है' वह ज्ञानी हो जाता है। फिर शब्द का प्रतिभास होता है, ऐसा देखकर उसे व्यवहार से जानता है ऐसा कहा जाता है। अथवा इन्द्रियज्ञान उसे जानता हुआ देखकर आत्मा उसे जानता है ऐसा कहने में आता है।

बात जरा सूक्ष्म है लेकिन समझ में आ सकती है। सूक्ष्म का अर्थ न समझ में आये ऐसा नहीं है। सूक्ष्म अर्थात् उपयोग को अन्यत्र मत जाने दो और अपनी मान्यता की पोटली बनाकर एक तरफ रख दो। अपनी जो मान्यता है न, इन्द्रियज्ञान को ज्ञान माना है न? इन्द्रियज्ञान (को) ज्ञान मानकर बैठा है। वह ज्ञेय है। अज्ञान है। आहाहा! इन्द्रियज्ञान के उदय से अतीन्द्रिय ज्ञान का नाश होता है। बाधक तत्त्व है वह, घातक है। यहाँ उसके प्रति उदासीन **तटस्थ** ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध तो यहाँ (आत्मा में) है। यह ज्ञाता और शब्द निकलता है यह मेरा ज्ञेय एसा है नहीं. आहाहा! यह तो असद्भूत व्यवहार का कथन है (कि) आत्मा पर को जानता है । वह सद्भूत भी नहीं है।

(- सम्बन्ध रहित, तटस्थ) है, तथापि अज्ञानी जीव, ऐसा होने पर भी, स्वभाव तो ऐसा है। **तथापि अज्ञानी जीव स्पर्शादि को अच्छे-बुरे मानकर**, स्पर्शादि को देखे तो यह ठीक और यह अठीक। उसे देखे तो ठीक और अठीक लगे न? किन्तु उसे न देखे और जाननहार को ही जाने तो? तो राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होगी। **मानकर रागी द्वेषी होता है, यह उसका अज्ञान है। -इस अर्थ की गाथा कहते हैं :-** अब दस गाथा मूल एक-साथ सब बोलो हरिगीत में।

रे! पुद्गलदरब बहु भाँति निंदा-स्तुतिवचनरूप परिणमे।
सुनकर उन्हें, 'मुझको कहा' गिन, रोष तोष जु जीव करे।। ३७३।।
पुद्गलरब शब्दत्वपरिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहिं कहा कुछ भी तुझे, हे अबुध ! रोष तू क्यों करे ।।३७४।।
शुभ या अशुभ जो शब्द वह 'तू सुन मुझे' न तुझे कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कर्णगोचर शब्द को ।।३७५।।

शुभ या अशुभ जो रूप वह 'तू देख मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे चक्षुगोचर रूप को ।।३७६।।
शुभ या अशुभ जो गंध वह 'तू सूंघ मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे घ्राणगोचर गंध को ।।३७७।।
शुभ या अशुभ रस कोई भी, 'तू चाख मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे रसनगोचर स्वाद को ।।३७८।।
शुभ या अशुभ जो स्पर्श वह 'तू स्पर्श मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कायगोचर स्पर्श को ।।३७९।।
शुभ या अशुभ गुण कोई भी 'तू जान मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर गुण अरे ।।३८०।।
शुभ या अशुभ जो द्रव्य वह 'तू जान मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर द्रव्य रे ।।३८१।।
यह जानकर भी मूढ जीव पावे नहिं उपशम अरे!
शिव बुद्धि को पाया नहिं वह पर ग्रहण करना चहे ।। ३८२।।

दस गाथा हरिगीत में आयी। मूल तो कुंदकुंद भगवान दो हजार वर्ष पहले हुए हैं। उन्होंने प्राकृत में ये गाथा बनाई। उसके एक हजार वर्ष बाद अमृतचंद्राचार्य हुए। उन्होंने इन्हीं गाथा की संस्कृत में रचना की और उनकी टीका भी उन्होंने की। उनका अर्थ और उनके भावार्थ और टीका हिन्दी में जयचंदजी पंडित ने की।

अब एक-एक गाथा जो है, दस गाथा, उनमें से एक गाथा का हम पहले अर्थ कर लेते हैं। दस गाथाओं का अर्थ होने के बाद उसकी टीका भी लेंगे संस्कृत की। पहले अर्थ एक-एक का लेते हैं। गाथा का अर्थ - ३७३ नंबर की गाथा, पहली गाथा है, उसका अर्थ।

बहुत प्रकार की निंदा के और स्तुति के वचनरूप में पुद्गल परिणमित होते हैं; किसी को भाव आये निंदा का और स्तुति का सामान्य प्रकार से, तो वे जो शब्द परिणमते हैं निंदा के या उसकी स्तुति के, नमस्कार या तिरस्कार, ऐसे कोई वचन निकलते हैं किसी के, उन वचनों का करनेवाला भी आत्मा नहीं है। वे वचन उसने किये हों, वह बोलता हो तो तो तू उसके प्रति रोष-तोष कर। लेकिन वे वचन तो स्वयं निकलते हैं। अज्ञानी आत्मा भी उनका कर्ता नहीं है, परिणमानेवाला नहीं है। पुद्गल परिणमते हैं बेचारे। वह जो निंदा का और स्तुति का उसे विकल्प उठा, वह विकल्प उसमें निमित्त है, उपचार से आत्मा को निमित्त कहा जाता है - अज्ञानी के आत्मा को, लेकिन वास्तव में उसका विपाक नहीं करता है। वह भगवान आत्मा है। और शब्द की पर्याय निंदा और स्तुतिरूप आती है, **पुद्गल परिणमित होते हैं;**।

निंदा और स्तुतिरूप वह अज्ञानी जीव नहीं परिणमता है। अज्ञानी तो अपने अज्ञानभावरूप

परिणमता है। और पुद्गल - वे परिणमते हैं निंदा-स्तुति रूप से। जीव निंदा के शब्दरूप या स्तुति के शब्दरूप, जड़रूप अज्ञानी का आत्मा भी परिणमता नहीं है। आहाहा! उन शब्दों का कर्ता भी अज्ञानी का आत्मा नहीं है। आहाहा! कदाचित् वह अज्ञानभाव को एक समय मात्र के लिए करे तो करो। लेकिन शब्दरूप तो परिणमता नहीं है। वह शब्द का स्वामी नहीं है। स्वयं पुद्गल ही शब्दरूप परिणमते हैं। निंदा और स्तुति के जो शब्द आये- पर्याय, वे पुद्गल परिणमते हैं, सामने।

उन्हें सुनकर, आहाहा! अर्थात् उनका लक्ष करके, **उन्हें सुनकर** अर्थात् उनका लक्ष करके **अज्ञानी जीव** शब्द पड़ा है। **अज्ञानी जीव 'मुझसे कहा' ऐसा मानकर**, तुझे कहा तो नहीं है लेकिन जैसे मुझे ही कहा हो। वह मानो मुझे ही कहता है। आहाहा! **ऐसा मानकर,** कहा तो नहीं है उसने। और वह कहता नहीं है शब्द कि तू मेरे सामने देख। लेकिन अज्ञानी स्वभाव को भूलकर उसका लक्ष करता है जैसे कि मुझे कहा हो। **'मुझसे कहा ' ऐसा मानकर**। आहाहा! शब्द कहते नहीं हैं दूसरों को। शब्द तो पुद्गल परिणाम से परिणमते हैं, पर्याय से, स्वतंत्ररूप से। आहाहा! उन शब्दों से यदि सबको रोष-क्रोध होता हो तो मुनिराज को भी होना चाहिये। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में तो आता है, शब्द के परिणाम। तो उनको भी क्रोध आना चाहिये। या राग आये स्तुति के वचन से। लेकिन ऐसा क्यों नहीं होता है? कि ज्ञानी उनको जानता ही नहीं है।

और जो उनको जानता है, वह आत्मा का ज्ञान नहीं है। अलौकिक गाथा है। आहाहा! **'मुझसे कहा' ऐसा मानकर**, कल्पना करता है, मुझे कहा। मुझे कहा-यह मुझे कहा, यह मुझे कहता है-मुझे कहता है, मुझे कहता है, मुझे कहता है, मुझे कहा, मैंने कहा, मैंने सुना कानों से, आहाहा! **ऐसा मानकर रोष और संतोष करता है**, आहाहा! राग और द्वेष करता है। **(अर्थात् क्रोध करता है और प्रसन्न होता है)।** या एकदम क्रोध फट जाता है। क्यों मुझे कहा यह? बापु! तुझे नहीं कहा है। तुझे कहाँ कहा है यह? और जो सुनता है, वो कान तेरा नहीं है। तू तो कान बिना का है। सुनने का साधन तेरे पास नहीं है। कान का आत्मा में अभाव है। उससे सूक्ष्म, जो यहाँ कान के पास भावेन्द्रिय का उघाड़ है न, आहाहा! उसने सुना है। मैंने कहाँ सुना है? उसका ग्रहण इन्द्रियज्ञान करता है। भावेन्द्रिय का विषय है। वह आत्मा का और आत्मा के ज्ञान का विषय नहीं है। ये ऊंचे प्रकार का (माल है)। ऊंचे दिवस हैं न? आराधना के?

मुमुक्षु :- दोनों का डिपार्टमेंट अलग है।

उत्तर :- डिपार्टमेंट जुदा है, अलग है। कोई हिस्सेदारी आत्मा के साथ (नहीं है)। आहाहा! उन शब्द के भी नहीं है, इस कान के हिस्सेदारी नहीं है और कान के तरफ का जो उघाड़ भावेन्द्रिय-खंडज्ञान, आहाहा! उसके साथ उसका ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध हुआ है। मेरे साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध नहीं हो सकता। आहाहा! आत्मा भिन्न, आत्मा का ज्ञान भिन्न, इन्द्रियज्ञान भिन्न, राग भिन्न और शब्द भी भिन्न। सब भिन्न-भिन्न है। आहाहा! कोई किसी को कहता नहीं है। शब्द नहीं कहते कि तू मुझे सुन। आहाहा! मुफ्त में वह स्वयं या तो क्रोधित होता है या प्रसन्न होता है। कहता है, ओहोहो! बहुत सुन्दर हमारी प्रशंसा की। वो प्रशंसा की, वो किसकी प्रशंसा की? किसने सुना? उसका तो विचार कर।

किसने कहा और किसने सुना? कहनेवाला कौन और सुननेवाला कौन? और उसे जाननेवाला

कौन? और उससे भिन्न आत्मा को जाननेवाला कौन? भेदज्ञान की गाथा है। तू मुफ्त में अपनी भूल से दुःखी होता है। मुझे कहा-मुझे कहा। तुझे तो कोई कहता नहीं है, आहाहा! दूसरा, वह सुनने का ज्ञान तेरे पास नहीं है!

मुमुक्षु :- तू कौन है? यह विचार कर।

उत्तर :- तुम कौन हो? विचार। मुझे कहा, लेकिन मुझे कहा, 'मुझे' अर्थात् किसको? यह किसको कहा है? यह तो विचार कर, आहाहा! अपने सिर पर मुफ्त में ही ओढ़ लेता है। आहाहा! कहनेवाला कौन है? सुननेवाला कौन है? उसको जाननेवाला कौन है? उससे भिन्न आत्मा को जाननेवाला कौन है? आहाहा! यह भेदज्ञान की बात चलती है। यह एक गाथा हुई।

अब दूसरी गाथा। दस बजे तक है न? दस का टाइम है न? **पुद्गल द्रव्य शब्दरूप से परिणमित हुआ है।** पुद्गल द्रव्य शब्दरूप से परिणमता है। उसका आत्मा तो शब्दरूप से परिणमता नहीं है। उसका आत्मा अलग है (और) शब्द निकलते हैं वे अलग हैं। दोनों के अंदर एकता नहीं है। **उसका गुण,** जो पुद्गल द्रव्य शब्दरूप से परिणमता है, **उसका गुण यदि (तुझसे) अन्य है,** उस शब्द की पर्याय तेरे से यदि भिन्न है..। तू तो जाननेवाला देखनेवाला ज्ञायक प्रभु आत्मा है, और जो शब्द परिणमते हैं सामने, वे शब्द, वे तो तेरे से भिन्न हैं। पुद्गल तो तेरे से भिन्न है लेकिन पुद्गल का जो गुण है, निंदा-स्तुति के शब्दरूप परिणमता है, ऐसा जो गुण अर्थात् पर्याय, शब्द की पर्याय, वह अन्य अर्थात् भिन्न है आत्मा से। तेरे से अन्य है। आहाहा! तुम तो ज्ञानमय आत्मा हो। शब्द तो पुद्गल की पर्याय हैं। पुद्गल तेरे से भिन्न है और पुद्गल की जो अवस्था शब्दरूप हुई, वह भी तेरे से भिन्न है।

तो हे अज्ञानी जीव! आहाहा! जो तेरे से भिन्न है उसको, **हे अज्ञानी जीव! तुझसे कुछ भी नहीं कहा है;** आहाहा! पुद्गल शब्दरूप से परिणमते हैं, लेकिन तुझे तो कुछ कहा नहीं है। कि मेरा नाम लेकर कहते हैं। कि तेरा नाम तो है नहीं रविचंद, तेरा नाम तो ज्ञायक है। रविचंद तो तेरा नाम नहीं है। रविचंद को कहें तो कहें, उससे तुझे क्या लेना-देना? तुझे क्या लेना-देना? तुम तो रविचंद हो नहीं। तुम तो आत्मा हो। आत्मा अरूपी है। वे (शब्द) तो जानते नहीं हैं मेरी आत्मा को। कहे कहाँ से मुझे? और उसे जाननेवाला ज्ञान भी मेरे पास नहीं है। तो कैसे मैं उसे जानूं? मैं तो मेरी आत्मा को जानते हुए परिणमता हूँ, बस! आहाहा!

उसका गुण यदि (तुझसे) अन्य है, तो हे अज्ञानी जीव! [तस्मात्] हे अज्ञानी जीव! करुणा करके कहते हैं, हे अज्ञानी प्राणी! अपने सिर पर ओढ़ लिया तूने मुफ्त का झगड़ा किसी और का।आहाहा! **हे अज्ञानी जीव! तुझसे कुछ भी नहीं कहा है;** आहाहा! उसने तो **तुझसे कुछ भी नहीं कहा है**। तो किसको कहा है? कि रविचंद को कहा हो, तो रविचंद तो मेरा स्वरूप है ही नहीं। ये तो इसका नाम है (शरीर का) झोले का। मैं तो रविचंद हूँ नहीं। मैं तो भगवान आत्मा हूँ। आहाहा! और भगवान आत्मा अरूपी अमूर्तिक। वह मेरे आत्मा को जानता नहीं है, तो मुझे किस प्रकार कह सकता है वह? उसकी आँख के द्वारा तो मैं जानने में आता नहीं। उसकी आँख द्वारा तो यह (शरीर रूपी) झोला जानने में आता है। इस झोले का नाम रविचंद है, तुझसे कुछ नहीं कहा है। हे अज्ञानी जीव! तुझसे तो कुछ नहीं कहा है। 'यह प्रत्यक्ष अभी पाँच व्यक्तियों के बीच में मेरी इज्जत खराब करके मुझे

कहा है।' कि तुझे तो कुछ कहा नहीं है, हे अज्ञानी जीव!

यह जगत से अलग बात है। यह जगत ,अज्ञानी जीव, उनके जो व्यवहार, उनसे अलग बात है। **तुझसे कुछ भी नहीं कहा है;** हे अज्ञानी जीव! हमें पता है। हमें पता है तू खड़ा है और सामने से शब्द निकले और उसने शब्द निकाले हैं, ऐसा भी हमने जाना। लेकिन हम तो ऐसा जानते हैं कि तुझसे तो कुछ भी नहीं कहा है। दो व्यक्ति तुम खड़े थे और तीसरा मैं अलग खड़ा था, ज्ञानी कहते हैं। लेकिन, तुझे कुछ कहा हो ऐसा तो मुझे कुछ लगता नहीं है। तूने क्यों अपने ऊपर ले लिया कि यह मुझे कहा?

यह शांति का उपाय है। अपनी शांति अपने को ही खोजनी है। **तुझसे कुछ भी कहा नहीं है; तू अज्ञानी होता हुआ**, मुझे कहा-मुझे कहा-मुझे कहा-मुझे कहा, आहाहा! 'मुझे कहा' ऐसा तू मानेगा, वह तेरा अज्ञान है। तुझे तो कुछ कहते नहीं हैं शब्द, कि तू मुझे ग्रहण कर, जान। तो **क्यों रोष करता है?** उसके प्रति तू किसलिये रोष करता है? आहाहा! तुझे तो कुछ कहा नहीं है। तू तो ज्ञाता आत्मा है। और (शब्द) ज्ञाता का ज्ञेय भी नहीं है। तू उसे जानता भी नहीं है। उसे जाननेवाला तो इन्द्रियज्ञान भिन्न है। इन्द्रियज्ञान से भिन्न ज्ञान आत्मा का है। वह आत्मा को जानता है। इन्द्रियज्ञान पर को जानता है, आहाहा! बहुत बातें हैं। अभी ये तो दो गाथाओं में सामान्य कथन है। फिर अब तीसरी गाथा से मूल शुरू होगा। मूल क्या कहना है आचार्य भगवान को, वह तीसरी गाथा से आयेगा। देखो! **क्यों रोष** किसलिए गुस्सा **करता है** उसके ऊपर? आहाहा! मुझे कुछ नहीं कहा? 'तुझे कुछ नहीं कहा है।' मुझे कुछ नहीं कहा है। मुझे कुछ कहा नहीं है तो मुझे गुस्सा करने का कोई कारण है नहीं।

एक घटना ऐसी घटी.., यह दृष्टांत दूँ तो ख्याल आयेगा कि क्या है परिस्थिति? परिस्थिति क्या है यह? कि सास-बहु का झगड़ा रोज होता था, पहले के समय में। अब तो काफी बदलाव हो गया है। अब तो झगड़ा होता है तो बहु कहती है कि मुझे अलग होना है। अर्थात् अलग हो जाते हैं फिर तो झगड़ा मिट जाता है। अब तो संयुक्त कुटुंब जैसा कुछ है नहीं। कहीं-कहीं है। आहाहा! बहुत झगड़ा होता, रोज झगड़ा होता था, और सास भी बोलती और फिर बहु भी फटकार लगाती, आमने-सामने। आहाहा! बाद में बहु थक गई। एक ज्योतिषी के पास गई। कि भाई! मुझे बहुत दुःख देती है मेरी सास। कि क्या होता है? तू इतिहास कह मुझे। कि वह दो बोलती है और मैं चार बोलती हूँ। वह दो शब्द बोले तो उसके सामने मैं चार पटकूँ (बोलूँ)। ठीक। यह झगड़ा चालू है? कितने समय से? कि बहुत समय से चालू है। उसका कुछ उपाय तुम बताओ। मुझे तो सुखी होना है।

तो (ज्योतिषी ने) कहा, कि देख, मैं एक तुझे डोरा करके देता हूँ न, उसको तू मैं कहूँ उसतरह प्रयोग करना। मंत्र तंत्र कुछ था नहीं। उसने गाठें लगाई। सात गांठ बाँधी। गांठें तो बड़ी होती हैं न डोरे की, तो गांठ बाँधी। ये मंत्रित गांठ हैं। वह जब बोले तब दोनों जाड़ के नीचे तुझे यह गांठ दबाकर रखनी है। जरा भी मुलायम पड़ने मत देना। तो वह प्रयोग किया उसने घर जाकर। तो सास बोलती रहे, बोलती रहे, पहले के काल में। 'कुछ बोलती नहीं है? कुछ मुँह में से निकाल ना?' अतः दो दिन, चार दिन, वह (सास) बोलती रही! वह (बहु) तो कुछ प्रत्युत्तर देती नहीं थी। गांठ दोनों जाड़ के बीच में दबाकर रखे। थक गई सास। सास थककर बंद हो गई। उसके घर में शांति हो गई।

कि तुझे कहाँ कुछ कहा है, आचार्य भगवान कहते हैं। बहु को कहते हैं कि तुझे कहाँ कुछ

कहा है? शब्दरूप से परिणमते हैं तो परिणमें। थककर बंद हो जायेंगे अपने आप। इसप्रकार तेरी कोई निंदा या स्तुति करता हो तो उन शब्दों का स्वामी मत होना। मौन रहना, ऐसा! गांठ तो नहीं लेकिन मौन रहना। सामनेवाला थक जायेगा।

एक बार, पचास वर्ष पहले की बात है। पचास-पचपन। गांधीजी का जोर था और हरिजन बंधु अखबार निकालते थे स्वयं। स्वयं लेख उसमें लिखते थे, हर सप्ताह। तो एक गाँव के अंदर, कोई सेवक था। प्रामाणिक था। सेवाभावी। अब, उसके प्रति उसकी वाह-वाह तो होती थी। सेवा करता है उसकी वाह वाह तो होती है कि नहीं? अतः कितने लोगों को (उसकी वाह-वाही) अच्छी नहीं लगी, ईर्ष्या हो गई! कि इसको कैसे गिरा दूँ, अब? ईर्ष्या में, एक धंधा ऐसा है, ईर्ष्या का। उसके पुण्य के उदय को सहन नहीं कर सकते। इसलिए उसके ऊपर आक्षेप लगाने लगे सब मिलकर, कि यह चोरी करता है, और पैसा खा जाता है, ऐसा और वैसा, खूब उसे परेशान करने लगे। अतः उसने पत्र लिखा गांधीजी को। कि मैं प्रामाणिक रूप से इतने वर्षों से सेवा करता हूँ गाँव की, फिर भी मेरे ऊपर ये लोग खूब झूठे आरोप लगाते हैं और मुझे परेशान करते हैं। इसका उपाय क्या? वह कृपा करके मुझे लिखो। अतः गांधीजी ने दो लाइन में उपाय कहा, कि उसके लिए तुझे कोई बचाव करना नहीं, प्रतिकार करना नहीं। बोलते-बोलते, बोलने दो, थक जाएँगे अपनेआप। अपनेआप (थक जाएँगे)। एक महीना, दो महीने, चार महीने हो गए, सब थक गए हैं, समझ गए? आहाहा! अर्थात् गांधीजी ने ऐसा कहा कि तू उनकी बात सुन ही मत। तुझे कुछ कहते ही कहाँ हैं? ऐसा करने तू! अपनेआप सब होगा!

इसप्रकार, गुरुदेव, जब उनका उदय हुआ, रमेश, तब बड़ी हलचल मच गई, अखबारों में, आहाहा! बहुत! स्थानकवासियों ने, श्वेतांबरों ने पहले किया हल्ला, और फिर दिगंबरों ने हल्ला किया। आहाहा! त्यागी और विद्वानों ने सभी ने खूब हल्ला मचाया, बहुत। तो वे लोग जवाब की राह देखते रहते। उत्तर की राह देखते रहते कि उनके आत्मधर्म में हमारे विरुद्ध कुछ तो आयेगा अब। हम उनको उकसाते हैं तो वे जवाब तो देंगे न कुछ? तो ऐसा करते करते, एक, सुरेन्द्रनगर में, एक भाई, खूब कीचड़ उछाली, गुरुदेव के विरुद्ध।

उसमें रामजीभाई एक बार तैयार हो गये। गुरुदेव को कहा, मैं सुरेन्द्रनगर जाता हूँ। 'क्यों भाई क्यों जाते हो सुरेन्द्रनगर?' 'क्या अपने मन में समझता है, हमारे विरुद्ध?' 'बैठ जाओ। शांति से बैठ जाओ। कहीं हमें सुरेन्द्रनगर नहीं जाना है।' वे तो (गुस्से में) उबल जाते बहुत। समझ गये, टक्कर (fight) देते हों! आहाहा! सौराष्ट्र में पहले नंबर की वकीलात की है। प्रसिद्ध, प्रामाणिक, मुरब्बी रामजीभाई! शांति रखो, हमें कुछ बोलना नहीं है। अपनेआप ही सब शांत हो जायेगा। कभी भी गुरुदेव ने प्रत्युत्तर विरोधी जीवों को दिया ही नहीं है। आहाहा!

करुणा करते, अरे! उनको समझ में नहीं आता इसलिए विरोध करते हैं। जब समझ में आयेगा तब विरोध अपनेआप मिट जायेगा। आहाहा! ऐसी घटनाएं तो गुरुदेव के साथ बार-बार हो गया। मुंबई में भी एक बार ऐसी घटना हुई थी। यहाँ तो हुआ ही करती हैं, समझ गये! हमेशा ज्ञानी जब पकते हैं तब सत्य बात कहते हैं। तो असत्य के आग्रहवाले तो होते हैं न? व्यवहार के पक्षवाले। उन्हें कहाँ से पसंद आये? इसलिए विरोध तो करते हैं। फिर एक व्यक्ति ने कहा, आहाहा! यह उनकी जो पॉलिसी है

जवाब न देने की, उसमें उनकी जीत हो गई। यदि जवाब देते तो वे हार जाते।

यह गुरुदेव बहुत कहते थे, हमें क्या? हमें क्या? स्वाध्याय करो। बस! हमें दूसरा कोई काम नहीं है। वे हमें कहाँ कहते हैं ? हम उनको कहाँ सुनते हैं? आहाहा! ऐसा करके स्वयं अपने में मस्त रहते थे। । अपनेआप शांति सब होती गई। धीरे-धीरे सब शमन (subside) हो गया।

इसप्रकार, आचार्य भगवान कहते हैं तुझे कहाँ कोई कुछ कहता है? तू क्यों अपने सिर पर लेता है? बिना बात का दुःखी होता है। मुझे ऐसा कहा, मैं ऐसा कर दूंगा, अब ऐसा कर दूंगा, अब ऐसा कर दूंगा, अब ऐसा कर दूंगा, चलो अब ऐसा करते हैं, सामने फिर ऐसा लिख दूं, कोर्ट में जाऊँ और नोटिस दूं और। अरे! रहने दे न। तुझे कुछ कहते नहीं हैं। आचार्य भगवान कहते हैं तुझे कुछ कहा ही नहीं है। कि साहेब! मुझे कहा है न? तुझे नहीं कहा है। इसप्रकार तू मुफ्त का अज्ञानी होकर 'मुझे कहा, मुझे कहा, मुझे कहा' (ऐसा मानकर) दुःखी हो रहा है। सुखी होना हो तो (ऐसा मान कि) मुझे कुछ कहते नहीं हैं।

मेरे कान ही नहीं हैं। कान का मेरे में अभाव है। द्रव्येन्द्रिय का मेरे में अभाव है। और भावेन्द्रिय का उघाड़ जो शब्द को ग्रहण करता है, ग्रहण करता है अर्थात् जानता है। ग्रहण करता है अर्थात् शब्द को जानता है, कौन? भावइन्द्रिय! आत्मा या आत्मा का ज्ञान शब्द को जानता नहीं है। आहाहा! तो तुझे कहाँ कुछ कहते हैं? शांति रख न प्रभु! अपनेआप सब (शमन हो जायेगा)। आहाहा! घी के बर्तन में घी मिल जायेगा। तू अपना काम कर ले। आहाहा! स्वयं अपना काम करके चले गये। और यह भी एक प्रकार का हमें उपदेश देते गये कि कोई तेरा विरोध करे तो शांति रखना। प्रतिकार मत करना। आहाहा! यदि प्रतिकार करेगा तो तो एकदम ज्यादा होगी लड़ाई। जमेगी। लेकिन वह लाइन लेनी या अपनानी कोई साधारण बात नहीं है।

समता के घर में बैठे रहना और विषमभाव होने देना नहीं। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ। मुझे तो कुछ कहते नहीं हैं। और जिसको कहते हैं वह शरीर तो मेरा है नहीं। मेरी आत्मा को तो देखते नहीं हैं। (तो फिर) किसको कहते हैं? हो गया। थोड़े टाइम में तो वह थक जायेगा बेचारा बोल बोलकर। वो सास थक गई थी ना, ओ री! बोलती नहीं है कुछ? तीन-तीन दिन से मैं तुझे कहती हूँ। एकदम (मुँह में) दबाकर रखा, हों! एक शब्द नहीं बोली। थक गई (सास)। इसप्रकार सभी थक जानेवाले हैं। आहाहा! ईर्ष्या की आग से क्या हो और क्या न हो, वह कहा नहीं जा सकता। अज्ञानी क्या करे और क्या न करे, उसका कुछ पता (नहीं है)।

टोडरमलजी जैसे! आहाहा! उनको हाथी के नीचे देखो न, (मार दिया)। ऐसी स्थिति, ऐसी तो बहुत स्थितियां आयी हैं भूतकाल में, प्रथमानुयोग में पढ़ते हैं हम, तो ऐसे उपसर्ग तो आते ही रहते हैं ज्ञानियों के ऊपर, आते हैं। आहाहा! अरे! मेरा द्रव्य, क्षेत्र, काल, (भाव) में पर का प्रवेश नहीं है। परिणाम का प्रवेश नहीं है तो पर के शब्दों का प्रवेश तो कहाँ से हो? उसका अखबार, तो उसका कागज बिगड़े और उसकी स्याही बिगड़े, मुझे क्या लेना-देना। मैं तो उसे जानता ही नहीं हूँ, आहाहा! कागज आये तो पढ़े बिना ही फाड़ देना न! पढ़ना मत। और शास्त्र पढ़ना उस टाइम पर। और वह (कागज) फाड़कर फिर शास्त्र का स्वाध्याय करेगा तो शांति हो जायेगी तुझे, आहाहा! ऐसा संसार में तो

चलता ही रहता है, आहाहा! अरे! मानसिक शांति भी इसमें आती है और आत्मिक शांति भी अंदर गहरा उतरे तो काम हो जाये।